रविवार, दि. १२-८-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ५

मोक्षमार्गप्रकाशक का सप्तम अध्याय चलता है। उसमें निर्जरा का अधिकार चलता है। निर्जरा अर्थात् आत्मामें से अशुद्धता का नाश होना, शुद्धता की वृद्धि होना और कर्म का झड़ना, तीनों को निर्जरा नाम धर्म की शुद्धि की वृद्धि कहते हैं। कर्म का झड़ना वह ... जाता है। अशुद्धता का गलना--व्यय हो जाता है और अपना शुद्ध स्वभाव, शुद्ध स्वभाव की निधि भण्डार अपना आत्मा अंतर स्वसंवेदन--ज्ञान से अपने ज्ञान को अनुभव करके वेदना, विशेषपने स्वरूप में स्थिरता का लीनता का होना उसका नाम निर्जरा और उसका नाम धर्म, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है।

तब शिष्यने प्रश्न किया, शास्त्र में '**तपसा निर्जरा च**' **ऐसा कैसे कहा है?**' तत्त्वार्थ सूत्र में, तत्त्वार्थ सूत्र उमास्वामी कृत, उसमें '**तपसा निर्जरा च**', तपसा निर्जरा ऐसा क्यों कहा? उसका समाधान। इच्छानिरोध तपः। शास्त्र में इच्छानिरोध तप (कहा है)। वर्तमान में बहुत गड़बड़ चलती है। बाह्य उपवास, उणोदरी, बाह्य त्याग, रस का त्याग, वनवास रहना, एकांत में रहना, आदि अनेक प्रकार की क्रियाकांड में निर्जरा नाम धर्म की शुद्धि और वृद्धि मानते हैं, वह मिथ्यात्वभाव है। उसको धर्म कैसे होता है, उसका उसको पत्ता नहीं है।

इच्छानिरोध। भगवान आत्मा में शुभ और अशुभ इच्छा ही नहीं है। इच्छानिरोध कहा न? तो आत्मा में शुभ और अशुभ इच्छा ही नहीं है। ऐसे आत्मा की दृष्टि और अनुभव करने से और उसमें उग्रपने प्रतपंति विजयंति, अपना शुद्ध स्वभाव का विजय होना और अशुद्ध परिणाम का पराजय होना (सो तप है)। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानंद मूर्ति परमानंद है, उसका संवेदनमें से सम्यग्दर्शन-प्रतीत करके बाद में उग्रपने अपना शुद्ध स्वभाव का विजय होना, विजयपताका फरके। समझ में आया? प्रभु आत्मा की शुद्धता में विजय होता है और अशुद्धता का नाश होता है उसको धर्म और निर्जरा कहने में आता है।

'**इच्छानिरोध तपः।**' '**इच्छा को रोकना उसका नाम तप है।**' भगवान ने तो ऐसा कहा है, भाई! तेरा उपवास, उणोदरी और बारह प्रकार का तप कर, बारह प्रकार के तप की क्रिया राग है। अभ्यंतर छह प्रकार का तप है, बाह्य छह प्रकार का है। तप में विकल्प का उठना, भेदरूप राग का होना है, वह वास्तव में अभ्यंतर तप नहीं।

मुमुक्षु :-- तो उसको निर्जरा क्यों कहा?

उत्तर :-- निर्जरा निमित्त से कहा। निर्जरा का कथन दो प्रकार का चलता है, निर्जरा दो प्रकार से नहीं। समझ में आया? निर्जरा का कथन दो प्रकार का चलता है। बाह्य तप निर्जरा (कहा) वह निमित्त देखकर (कहा है)। अंतर में इच्छा पुण्य-पाप की रोककर शुद्धि का, आनंद का अमृत का वेदन विशेष हो जाये, उससे निर्जरा होती है, परन्तु बाह्य तप साथ में निमित्त-तप देखकर, सहचर देखकर उपचार से व्यवहारतप है ऐसा आरोप करने में आया है। समझ में आया? वह व्यवहारतप तप है ही नहीं। आहाहा..! समझ में आया?

जैसे व्यवहार सम्यग्दर्शन,... अपना शुद्ध चैतन्य निर्विकल्प की श्रद्धा और परिणति (होना) उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग और पंच महाव्रत आदि परिणाम का विकल्प चारित्रव्यवहार और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग व्यवहारसमकित (है)। समकित दो प्रकार का नहीं है। समकित सहित कथनी-निरूपण, निरूपण दो प्रकार का चलता है। एक स्वआश्रय, एक पराश्रय। स्वआश्रय चैतन्य की श्रद्धा अनुभव में होना, निर्विकल्प आत्मा का अनुभव होना। ओहो..! समझ में आया? उसको निश्चय नाम सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। साथ में राग है, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व का भेदवाली श्रद्धा उसको निमित्त देखकर साथ में रहनेवाला देखकर व्यवहार से निमित्त को अनुकूल कहा। व्यवहार से। निश्चय से अनुकूल नहीं है। समझ में आया? वह तीव्र कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा निकल गयी है और नव तत्त्व वीतराग कहते हैं ऐसा भेद करके उसके विकल्प की श्रद्धा है, ऐसा निमित्त को निश्चय सम्यग्दर्शन में व्यवहार से अनुकूल मानकर उसको आरोप कहा कि वह सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन है नहीं। है नहीं उसको सम्यक् कहना उसका नाम व्यवहार है। भारी बात भाई! समझ में आया?

जो चीज जैसी है ऐसी निश्चय कहता है। व्यवहार तैसी बात करता नहीं। व्यवहार अन्यथा कहता है। दो नय का कथन शास्त्र में चले और कहे कि यह शास्त्र में लिखा है न। लिखा है, भैया! किस नय का कथन है? उपचार का है? व्यवहार का है? निमित्त का है? कि यथार्थ का है? ऐसा यथार्थ भान हुए बिना अकेले राग की क्रिया को सम्यग्दर्शन मान लेना मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसा अपना आत्मा का सम्यक्ज्ञान--आत्मज्ञान, शास्त्रज्ञान नहीं। आहा..! अपना आत्मा शुद्ध अखंडानंद का अन्दर स्वज्ञेय को वर्तमान ज्ञान की पर्याय से अभेद होकर, अभेद होकर जो ज्ञान स्वसंवेदन का विकास हुआ उसका नाम निश्चय सम्यक्ज्ञान है। समझ में आया? ैर उसके साथ शास्त्र का विकल्पात्मक ज्ञान, निमित्त अनुकूल कुशास्त्र का ज्ञान नहीं है, ऐसा शास्त्र अध्ययन, शास्त्र का ज्ञान विकल्पात्मक में निमित्त को गिनकर, सहचर देखकर

सम्यक्ज्ञान व्यवहार से आरोप से कहा है। सम्यक्ज्ञान है नहीं। समझ में आया?

ऐसे सम्यक्चारित्र। दर्शन, ज्ञान, चारित्र के बाद तप आता है कि नहीं? ऐसे चारित्र अपने स्वरूप में लीनता, स्वरूप में रमणता, स्वभाव में चरना, चरना, रमना, अतीन्द्रिय शांति का रस का उग्रपने वेदन (करना), उसका नाम भगवान निश्चय नाम सच्चा चारित्र कहते हैं। ऐसे चारित्र के साथ में राग की मंदता का पंच महाव्रत और बारह व्रत का विकल्प आदि देखकर, निमित्त की व्यवहार से अनुकूलता देखकर वह चारित्र है ऐसा आरोप करने में आया है। वह चारित्र है नहीं। पंच महाव्रत और बारह व्रत... वह तो पहले आ गया। यह तो ... चलता है, यह तो निर्जरा की बात चलती है। समझ में आया? कहाँ गये नवरंगभाई? समझ में आया यह? भारी बात भाई! व्यवहार से निश्चय हो, वह तो आरोप करने की चीज है, वास्तविक चीज है नहीं। वह तो पहले आ गया। पंच महाव्रत का परिणाम चारित्र नहीं।

मुनि को पंच महाव्रत का परिणाम निश्चय आत्मज्ञान, दर्शन और लीनता के साथ में (होते हैं, वह) चारित्र नहीं। अट्ठाईस मूलगुण चारित्र नहीं। लेकिन निमित्त की व्यवहार से अनुकूलता ऐसा उस भूमिका में राग आये बिना रहता नहीं। उस भूमिका में ऐसी योग्यता व्यवहार इससे नीचे नहीं हो जाता है, इतनी अपेक्षा गिनकर उसको चारित्र का आरोप देने में आया है। समझ में आया? तीव्र पुण्य परिणाम से हटकर तीव्र परिणाम पाप में आते नहीं और इतना व्यवहार की अनुकूलता देखकर पंच महाव्रत को चारित्र कहा। चारित्र है नहीं। निरूपण दो प्रकार का है, वस्तु दो प्रकार नहीं है। दो प्रकार की नहीं है, वस्तु एक प्रकार की है।

अब यहाँ चलता अधिकार। समझ में आया? इच्छानिरोध तपः। भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद का अमृत का स्वाद में इच्छा ही उत्पन्न नहीं होती। लोग कहते हैं कि भगवान ने क्यों बारह वर्ष तप किया? ऐसा कहते हैं, धन्नालालजी! क्या? महावीर भगवान ने बारह वर्ष तप किया तब उनको केवलज्ञान हुआ। निर्जरा हुई तो केवलज्ञान हुआ। अरे.. प्रभु! सुन तो सही। भगवान ने क्या किया था और कैसे उनको लाभ हुआ, वह अंतर की बातें हैं। बाहर का आहार तो छ मास-छ मास न मिला (वह तो) नहीं मिलने का था। छ-छ मास आहार नहीं मिलने का था। उसे मैंने छोड़ा ऐसा है नहीं। और उस ओर का विकल्प है कि मैं छः महिने आहार नहीं करुँगा, वह विकल्प भी पुण्यभाव है, वह भी निर्जरा नहीं, तप नहीं, शांति नहीं, अमृत का स्वाद नहीं। समझ में आया?

भगवान अमृत की निधि अतीन्द्रिय अमृत का स्वाद, जिस स्वाद के आगे आहार की इच्छा ही छः महिने तक उत्पन्न नहीं हुई। समझ में आया? इच्छानिरोध कहा

है, बराबर है, परन्तु वह इच्छा हुई थी और अटका दिया (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? शास्त्र तो शास्त्र की भाषा से कथन करे। इच्छानिरोध तपः। क्या इच्छा उत्पन्न की और उसके ... में निरोध किया? वह विकल्प पहले था कि आहार न करुँ। भान था, अपने शुद्ध श्रद्धा, अनुभव ज्ञाता-दृष्टा। अपना शुद्धोपयोग बढ़ाने के कारण और निमित्त में ऐसी इच्छा हुई कि आहार छोड़ दूँ। आहार तो छूटा ही पड़ा है, आहार कहीं आता था और छोड़ दिया (ऐसा नहीं है)। ऐसी इच्छा है उसको मैं छोड़ दूँ। क्या छोड़े? इच्छा आनन्द का स्वाद में उत्पन्न हुई नहीं। .. इच्छा भी उत्पन्न नहीं हुई। समझ में आया? इसको भगवान निर्जरा नाम धर्म की वृद्धि, शुद्धि की वृद्धि और अशुद्धता का नाश कहने में आता है। समझ में आया? कहाँ का कहाँ तप लगा दे। पाँच उपवास किये, तप है, कुछ तो लाभ है कि नहीं? व्यवहार है कि नहीं? निश्चय के बिना निमित्त का आरोप भी किसको देना? समझ में आया? चावल ही नहीं है, तो बोरी को चावल की बोरी किसको कहा? चावल ही नहीं है और चावल की बोरी। बोरी कहते हैं न? थैला, थैला। लेकिन चावल ही नहीं है और खाली बारदान है। बारदान को चावल का बारदान कैसे कहा? चार मण चावल है, चोखा समझे न? चावल, ढाई सेर का बारदान है तो साथ में तोला जाता है। चार मण, ढाई शेर। वह पकने में काम आता नहीं। ढाई शेर तो चार मण ढाई शेर (बोले)। कुंवरजीभाई! मजदूर बोले न? हमारी ... की दुकान के साथ नूर महमद की दुकान थी न। मजदूर बोले, चार मण ढाई शेर। चार मण ढाई शेर, बोरी सहित बोलते हैं ऐसा लगता है।

ऐसे बाह्य तप, अशुभी की इच्छा टलकर और शुभ हुई और शुभ रहित जितनी शांति और आनंद का वेदन है उसके साथ बाह्य तप के बारदान को साथ में गिनकर उसको तप व्यवहार से कहने में आया है। आत्मा का आनंद का, इच्छानिरोध में जो आनंद होता है, उसमें वह इच्छा काम आती नहीं। बाह्य तप किंचितकर है नहीं, बाह्य तप अंतर तप किंचितकर कार्य करता नहीं। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन में व्यवहार सम्यग्दर्शन अकिंचित्कर है। आहाहा..! चंदुभाई! व्यवहार.. व्यवहार.. व्यवहार.. हम व्यवहार और निश्चय दोनों मानते हैं, वे लोग एक निश्चय मानते हैं, प्रभु! सुन भाई! बापू! तुझे निश्चय-व्यवहार का गहरा घर (मालूम नहीं)। समझ में आया?

आत्मा, जब निश्चय आत्मा के स्वाश्रय से अखंड परमात्मस्वरूप मेरा, उसकी अनुभव में प्रतीत हो तब साथ में राग आता है, वह अकिंचित्कर सम्यग्दर्शन में होनेपर भी व्यवहार का आरोप आता है। जो किंचित्कर है तो उसको व्यवहार कहने में आता नहीं। समझ में आया? ऐसे आत्मा का सम्यक्ज्ञान, आत्मज्ञान, आत्मद्रव्य का ज्ञान,

आत्मभान अंतर आत्मा के आश्रय से सम्यक्ज्ञान हुआ वह तो यथार्थ स्पष्ट है, ... है। साथ में शास्त्रज्ञान को विकल्प को व्यवहारज्ञान कहा वह, सम्यक्ज्ञान के लिये अंकिचित्कर है। आहाहा..! निश्चय सम्यक्ज्ञान के लिये शास्त्रज्ञान अकिंचित्कर है। चंदुभाई! आहाहा..! अरे.. भगवान! जो सम्यक्ज्ञान के कार्य के लिये अकिंचित्कर है उसको सम्यक्ज्ञान कहना उसका नाम आरोप है। व्यवहार है, व्यवहार है उसमें कुछ माल-बाल है नहीं। यहाँ तो व्यवहार में सब रख दिया, निश्चय तो पड़ा रहा। समझ में आया?

ऐसे भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य का अनुभव, इसके अतिरिक्त स्वरूप की स्थिरता, अविकारता, निर्मलता, शांति की बढवारी पर्याय में हुई। उसका नाम चारित्र। और पंच महाव्रत का परिणाम अकिंचित्कर चारित्र के लिये है। आहाहा..! अकिंचित्कर न हो तो उसको व्यवहार ही नहीं कहने में आता है। व्यवहार कहो कि निमित्त कहो। नहीं तो उसका कर्ता हो जाये तो स्वभाव का कार्य उसने किया ऐसा एक ने दो कार्य किया--निश्चयकार्य भी किया और व्यवहारकार्य भी किया। ऐसा है नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत और अठ्ठाइस मूलगुण भी अपने चारित्र में अकिंचित्कर है। उसको निमित्त से, नीचे गिरता नहीं देखकर, भूमिका के योग्य ऐसा भाव देखकर आरोप करके चारित्र ऐसा कहने में आया है।

ऐसे तप। आराधना चार प्रकार की होती है न? दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप। तो यहाँ तप का बोल आया मौके पर आया है। समझ में आया? कहते हैं, '**इच्छा को रोकना उसका नाम तप है।**' भगवान आत्मा,...! वह तो विकल्प की किलबिलाहट है (कि) मैंने छोड़ दिया, मैंने उपवास किया और आहार छोड़ दिया। आहार छोड़ दिया का अभिमान ही मिथ्यात्व है। क्या वह आहार तेरे पास आनेवाला था तो तुझे इच्छा हुई तू आने से रुक गया? धन्नालालजी! क्या कवल आनेवाला था? थाली में पड़ा है। रोटी, दाल, चावल, सब्जी मुझे नहीं खाना है। आज उपवास है, चलो। तो क्या वह मुख में आने की चीज थी? और तुझे इच्छा हुई तो तूने छोड़ दी? भ्रमणा है। समझ में आया? वह चीज मुख में नहीं आनेवाली थी। उसका परावर्तन के नियम में उस चीज का वहीं रहना था, यहाँ तक आना नहीं था। उसने इच्छा में माना कि मैंने छोड़ दिया। (वह) परद्रव्य का स्वामी होकर मिथ्यादृष्टि होती है। समझ में आया? और जो इच्छा हुई कि मैंने छोड़ा, उस इच्छा में भी मुझे कुछ लाभ है, शुभ में कुछ लाभ है ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मूढ है। उसको तो निश्चय और व्यवहार दोमें से एक भी होता नहीं। समझ में आया?

लेकिन जब आत्मा को इच्छा उत्पन्न न हो ऐसी इच्छा बिना की रमणता, विजय

चैतन्य का हुआ, डंके की चोट पर आत्मा जागृत होकर अपना विजय शुद्धि की हुई। समझ में आया? तब अशुद्धता का नाश होता है, अशुद्धता की उत्पत्ति होती नहीं और कर्म का झड़ना होता है, उसको निर्जरा कहते हैं। परन्तु उस निर्जरा के साथ यह शुभ विकल्प और बाह्य तप है--उपवास, उणोदरी इत्यादि, अरे..! विनय, वयावच्च, विनय, वयावच्च वह सब विकल्प है। ओहोहो..! अरिहंत का विनय करुँ, गुरु का विनय, शास्त्र का विनय सब विकल्प है। समझ में आया? उस विकल्प को व्यवहारतप कहने में आया, वह उपचार से है, वह अकिंचित्कर है। निश्चय अपनी शुद्धि के विजय में उस बाह्यतप की इच्छा अकिंचित्कर है। आत्मा का कार्य करने में कुछ भी ताकत नहीं है। विरुद्ध कार्य करने की ताकत है। समझ में आया? उससे तो बन्ध होता है, पुण्यबन्ध का कारण विरुद्ध करता है।

इसलिये कहा कि, '**शुभ-अशुभ इच्छा मिटनेपर उपयोग शुद्ध हो...**' देखो! शुभ और अशुभ दोनों इच्छा की उत्पत्ति न हो। मिटने का अर्थ वह। समझ में आया? शुभ और अशुभ इच्छा मिटे। मिटे माने उत्पत्ति न हो। उत्पत्ति न हो तब आनन्द की शांति की उत्पत्त हो। वह उपयोग शुद्ध है, उसको शुद्धोपयोग कहते हैं। और शुद्धोपयोग ही निर्जरा है, उसको निर्जरा कहने में आयी है। वास्तविक निर्जरा वह है। अशुद्ध का नाश उपचार से, कर्म का नाश भी उपचार से निर्जरा कहने में आयी है। समझ में आया? '**शुभ-अशुभ इच्छा मिटनेपर उपयोग शुद्ध हो वहाँ निर्जरा है।**' वहाँ आत्मा की शांति की बढ़वारी है। '**इसलिये तप से निर्जरा कही है।**' इस कारण से व्यवहारतप को निर्जरा उपचार से कहने में आया है।

'**यहाँ कहता है--आहारादिरूप अशुभ की तो इच्छा दूर होनेपर ही तप होता है,...**' प्रश्न किया प्रश्न। '**आहारादिरूप अशुभ की...**' आहार की इच्छा करना तो अशुभ है। समझ में आया? यहाँ तो साधारण बात की है, संसार की अपेक्षा से, हाँ! मुनि को आहार करने की इच्छा अशुभ नहीं है। कोई ऐसा कहे कि मुनि की आहार करने की इच्छा सो पाप है। ऐसा नहीं है। यहाँ तो गृद्धिपने जो करता है, समझ में आया? '**आहारादिरूप अशुभ की तो इच्छा दूर होनेपर ही तप होता है,...**' वह शिष्य प्रश्न करता है, हाँ! '**परन्तु उपवासादिक व प्रायश्चित्तादिक शुभ कार्य हैं...**' उपवास करना, रस का त्याग करना, कायोत्सर्ग करना, प्रायश्चित्त करना, विनय करना, वयावच्च करना। बाह्यतप की बात चलती है, अभ्यंतर की बाद में आयेगी। समझे न? लेकिन फिर भी प्रायश्चित्त एकसाथ ले लिया है। चलती तो बाह्यतप की बात चलती है, लेकिन उसमें अभ्यंतर तप की प्रायश्चित्त आदि को साथ में शिष्य के प्रश्न में आ गया है। उपवास, उणोदरी, पेट में अल्प रखना, रस का

त्याग, प्रायश्चित्त, विनय, वयावच्च आदि शुभकार्य हैं, '**इनकी इच्छा तो रहती है।**' शिष्य का प्रश्न है कि उसकी तो इच्छा रहती है।

'**समाधान :-- ज्ञानीजनों को उपवासादिक की इच्छा नहीं है,...**' आहाहा..! धर्मी को आत्मा सच्चिदानंद शुद्ध निर्विकल्प आत्मा का भास--वेदन हुआ, उसको उस उपवास की इच्छा नहीं है। समझ में आया? '**एक शुद्धोपयोग की इच्छा है,...**' अंतर में स्थिर होऊँ, अंतर में स्थिर होऊँ, शुद्ध को मैं पकडुँ, ज्ञायक स्वरूप को पकड़कर मैं आनन्द में झूलु, ऐसी शुद्धोपयोग की सम्यग्दृष्टि को इच्छा है। समझ में आया? ओहो..! भारी गड़बड़ भाई! आज इसने इच्छा की और इच्छा रोकी, इतनी अशुभ इच्छा रोकी उतना तो तप है कि नहीं? धूल में भी तप नहीं है, सुन न! मिथ्यादृष्टि है। अशुभ इच्छा रोकी और शुभ हुई उसमें तप मानता है, निर्जरातत्त्व की अयथार्थता है। तत्त्वार्थ श्रद्धान में निर्जरातत्त्व का क्या स्वरूप है, उसकी उसको खबर नही।

ज्ञानी को '**एक शुद्धोपयोग की इच्छा है।**' अब आया, चंदुभाई! अब आया। '**उपवासादि करने से शुद्धोपयोग बढ़ता है, इसलिये उपवासादि करते हैं।**' क्या कहते हैं? उपवासादि से यदि शुद्धोपयोग बढ़ता हो तो अनन्त बार उपवासादि किये। छः-छः महिने के उपवास, अभवि और भवि (दोनों ने) अनन्त बार किये हैं। परन्तु कहते हैं कि ज्ञानी को भावना क्या है? कि आज आहार करने की इच्छा नहीं है। हेतु क्या है? निवृत्ति में मेरा शुद्धोपयोग अंतर में रमे। समझ में आया? निमित्त के लक्ष्य से हटकर मैं मेरी प्रवृत्ति में आहार की इच्छा... वह प्रवृत्ति रुक जाये तो मेरे चैतन्य पर एकाग्र होने का मुझे अवसर मिले। और एकाग्र हो तब उस बाह्य त्याग को निमित्त कहने में आता है। समझ में आया? तो कहते हैं, '**उपवासादि करने से शुद्धोपयोग बढ़ता है,...**' इसमें उलटा अर्थ करे। दो-तीन बार बात आ गयी है। लेकिन जिसे शुद्धोपयोग है उसको उपवासादि निमित्त कहने में आता है। ऐसा उपवास तो अनन्त बार किया। 'मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' वस्तु की अंतर अनुभवदृष्टि, अखण्डानंद परमात्मा प्रतीत में, अनुभव में न आवे और अकेली उपवासादि क्रिया से शुद्धोपयोग बढ़े ऐसा तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? वह व्यवहार का कथन आया। निमित्त का कथन। पहले कहा था कि निमित्त व्यवहार अकिंचित्कर है। चंदुभाई! यहाँ किंचित्कर कहा। भाई! अरे.. भगवान! वह तो धर्मात्मा को, आज अष्टमी है, चौदस है, आज मुझे आहार की इच्छा नहीं है। ऐसा होकर उसकी भावना क्या है? स्वरूप में लीन निवृत्ति से मेरे आत्मा को पकड़कर मैं आत्मा के आनन्द में घुमुं, आनन्द में अन्दर डोलूँ ऐसा शुद्धोपयोग

की ज्ञानी की भावना है। उपवास की भावना नहीं। समझ में आया? इच्छा की भावना कि ऐसा त्याग करुँ, ऐसी भावना नहीं है। आहाहा..! लक्ष्मीचंदजी! ऐसी बात है। दसलक्षणी पर्व करते हैं। कैसा तप करते हैं न, व्रत का, षोडशकारण भावना, रत्नत्रय, चलेगा। उपवास, उपवास.. निर्जरा-निर्जरा का बक्सा। निर्जरा का बक्सा माने निर्जरा-फिर्जरा है नहीं, बारदान है। चैतन्यदल निर्विकल्प चैतन्य आत्मा, वर्तमान में अंतर भास हुए बिना वर्तमान में शुद्धोपयोग कहाँ-से आयेगा? समझ में आया? वर्तमान पर्याय में त्रिकाल द्रव्य शुद्ध आनंदकंद है, ऐसी भात हुए बिना उसमें लीन होना है, ऐसी लीनता कहाँ-से आयेगी? पहले तो खबर नहीं है कि चीज क्या है और किस तरफ मुझे ढलना, मुड़ना है। अकेले बाह्य तप करके ऐसा मान ले कि हमें शुद्धोपयोग बढ़ाने के लिये, शुद्धोपयोग बढ़ाने के लिये है। समझ में आया? ऐसा है नहीं।

'**इसलिये उपवासादि करते हैं। तथा यदि उपवासादि से शरीर...**' देखो! उपवास, त्याग, कायोत्सर्ग आदि शरीर की '**या परिणामों की शिथिलता के कारण...**' ऐसा जाने कि यह तो अब शरीर जीर्ण होता है। सहनशीलता में भी कमी हो जाती है। समझे? ऐसे परिणाम और शरीर कि शिथिलता के कारण '**शुद्धोपयोग को शिथिल होता जाने...**' ऐसा कहते हैं। शुद्धोपयोग में बराबर जमवट नहीं होती है, ऐसा निमित्त-शरीर मंद हो गया और परिणाम में भी इतनी उग्रता रही नहीं। तो आहार कर लेते हैं। समझ में आया? '**शिथिल होता जाने तो वहाँ आहारादिक ग्रहण करते हैं।**' आहारादिक ग्रहण करते हैं माने प्रतिज्ञा की थी और ग्रहण करते हैं, वह बात यहाँ नहीं है। समझ में आया? वह बात नहीं है। लेकिन बाद में जाने कि अब शरीर काम करता नहीं, परिणाम में (उग्रता) नहीं है, फिर उपवास न करे, फिर उपवास न करे और शुद्ध की अंतर में एकाग्रता करने का प्रयत्न करे, ऐसा प्रयत्न चले।

'**यदि उपवासादिकही से सिद्धि हो...**' उपवास, उणोदरी, रस का त्याग उससे यदि आत्मा की निर्जरा और शुद्धि होती हो, '**अजितनाथ आदि तेईस तीर्थंकर...**' ऋषभदेव भगवान तो छः महिने का उपवास था और दूसरे छः महिने आहार मिला नहीं तो बारह महिने हो गये। परन्तु अजितनाथ भगवान दूसरे तीर्थंकर भगवान के बाद पचास लाख क्रोड़ सागरोपम के बाद हुए। समझ में आया? दो उपवास किये। तीर्थंकर की शक्ति नहीं थी? तीर्थंकर तो महान समर्थ हैं। समझ में आया? कहते हैं... आदि पुराण में तो ऐसी बात आती है कि, भगवान ने आहार क्यों लिया? छः महिने का उपवास (था), लेकिन बारह महिने हुअे, आहार क्यों लेने जाते थे? कि ... ख्याल आवे कि तीर्थंकरों को भी जब इतना नभाव नहीं होता तो वे भी आहार लेते हैं। ऐसा अनुकरण कराने को किया, ऐसा आदिपुराण में पाठ है। समझ में आया? वे

तो शक्तिवान है। महा तीन ज्ञान, चार ज्ञान, मुनि हुए न, चार ज्ञान (तो हैं)। तो क्या ज्ञान में उपयोग रखते होंगे कि कल आहार क्या मिलेगा? कौन-सा बाजरा, किस खेत से आया हुआ और कैसी रोटी आयेगी, ऐसा उपयोग रखे? समझ में आया? चार ज्ञान थे (फिर भी) छः महिने भोजन के लिये आये और गये। कोई तो ऐसा कहे कि ऐसे कैसे साधु हैं? पुनः तीर्थंकर। आज तो गये, वापस आये। कल भी गये, वापस आये तो मनःपर्यय (ज्ञान में) उपयोग तो रखना (चाहिये) था। अवधिज्ञान है, उपयोग तो रखना था (कि) कहाँ-से आहार मिलेगा? किस क्षेत्र से मिलेगा? कैसा आहार मिलेगा? मिलेगा कि नहीं? अरे.. भगवान! वे कहीं निकम्मे हैं ऐसा उपयोग करने को? आहाहा..! अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान प्रगट हुआ है, तो भी वहाँ उपयोग रखने में लाभ क्या है? आहाहा..! वाड़ीभाई!

लोकोत्तर और लौकिकक्रिया बड़ा पूर्व-पश्चिम जितना अंतर है। लोग तो ऐसा मान ले कि, लो, ये चार ज्ञान के धनि, वह तो जैन उनके भगवान को ऐसा कहे। बड़े-बड़े कहकर प्रशंसा करे। परन्तु गये क्यों? एक दिन नहीं मिला, दो दिन नहीं मिला, एक महिना नहीं मिला, दो महिने मिला नहीं। चार महिने, पाँच महिने के बाद विचार तो करना था कि नहीं? लब्धरूप जो ज्ञान हुआ वह मोक्ष का कारण नहीं है, अवधि और मनःपर्यय। समझ में आया? क्या कहते हैं? अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान प्रगट हुआ वह मोक्ष का कारण नहीं। मोक्ष का कारण तो एक मति और श्रुतज्ञान ही है। और वह मति और श्रुतज्ञान अपने स्वभाव में लपेट होता है उसको मोक्ष का कारण कहने में आता है। समझ में आया? बीच में इतना उपयोग का उघाड़ हुआ, उपयोग करने की दरकार नहीं है। मेरा काम करना है कि मेरे को उपयोग देखना है? अवधि, मनःपर्यय का उपयोग करना उसमें मेरा क्या काम आया? मेरा काम क्या आया? धन्नालालजी! आहाहा..! दूसरों को बता दे कि आप का ऐसा होगा और वैसा होगा। अरे..! क्या काम है उसमें?

मेरा चिदानंद भगवान मेरा वर्तमान मति-श्रुतज्ञान जो साधक मोक्ष का कारण है, केवलज्ञान तो कारण है नहीं, वह तो फल है। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान तो बीच में एक ऋद्धि, ऋद्धि--वैभव है, मूल चीज नहीं। मति-श्रुत अंतर में वेदन अंतर में उग्रपने करना (उससे) शुद्धि होकर निर्जरा होती है। समझ में आया? तो वह उपयोग तो भगवान ऋषभदेव को सदा काम करता था और अवधि, मनःपर्यय के विकास का उपयोग देते नहीं। समझ में आया?

भगवान तो आहार लेने को जाते थे। आहा..! अरे..! मेरे को काम मेरी शुद्धि का है। मेरा चैतन्य में वास्तविकपने एकाकार होना वही मेरा कार्य (है)। '**णियमेण**

य जं कज्जं'। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र निर्विकारी वह निश्चय से करने लायक कार्य तो वह है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का उपयोग का कार्य तो मेरा है नहीं। चंदुभाई! अरे.. भगवान! तो यह जड़ की क्रिया का कार्य मेरा है, मैं चलता हूँ, बोलता हूँ, प्रभु! वह तेरी चीज में नहीं है। समझ में आया? अरे..! रागा आया शुभ, वह मेरा कार्य है और करने लायक है, सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा का अनुभव में यह बात है नहीं। समझ में आया? मूलजीभाई! ओहोहो..! लो, यह वास्तु है न? प्रभुभाई! यह आत्मा का वास्तु चलता है। .. बैठे हैं न दोनों। ... व्रत हो गया? दो जन को अभी व्रत है न? समझ में आया?

वास्तु नाम चैतन्य वस्तु, उसमें वास्तविकपने शक्तियाँ बसी है, ऐसी वस्तु में अन्दर घुस जाना, इच्छा को रोककर घुस जाना उसमें वास्तु अनादि काल से नहीं किया, वह किया। समझ में आया? अनन्त-अनन्त काल हुआ परन्तु... वह वस्तु है, हाँ! गोम्मटसार में पाठ है। गोम्मटसार में नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती वस्तु किसको कहते हैं? कि, जिसमें शक्तियाँ--गुण, पर्यायें बसे उसको वस्तु कहते हैं। गोम्मटसार, नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती। जिस में गुण और पर्याय बसे, उसको वस्तु, वस्तु--वास्तु कहते हैं।

ऐसे भगवान आत्मा इच्छानिरोध... यहाँ तप की बात चलती है न? इच्छानिरोध होकर इच्छा की उत्पत्ति नहीं। बाह्य का तप निमित्त देखकर उसको तप कहा, परन्तु वास्तव में वह तप है नहीं। उससे हठकर अंतर में लीन एकाकार होता है, उसमें बाह्यतप बिलकुल अकिंचित्कर है। अकिंचित्कर है तब उसको व्यवहार कहने में आता है। नहीं तो निश्चय का संग उसको कहते थे। निश्चय को साथ दिया। निश्चय को साथ देनेवाला निश्चय हो जाता है। समझ में आया?

तो कहते हैं, इसमें तो बहुत गड़बड़ है। एक जन कहता था, भाई! व्याख्यान चले न, अरे.. भैया! उणोदरी तप (है)। देखो! हमें तो जगह-जगह धर्म है। बारह प्रकार के तप में एक कवल कम खाओ, सात रोटी खाते हो और छः खाओ (तो) उणोदरी तप (हुआ)। तप सो निर्जरा, निर्जरा सो धर्म और धर्म है वह मोक्ष को समीप लाता है। समझ में आया? कहाँ गये केवलचंदभाई? उनके चिरंजीवी ने प्रश्न किया था। हसमुख ने। महाराज! यह छः रोटी खाये उसमें से एक रोटी कम खाये तो उणोदरी तप किया। उणोदरी तप धर्म हुआ। अब वह धर्म बढ़ाये या अंतर के परिणाम सुधरे वह धर्म? ऐसी शैली प्ररूपे, लो! देखो! उणोदरी तप कहा है कि नहीं? बत्तीस कवल का आहार है। एक कवल कम ले तो उसको उणोदरी तप कहते हैं कि नहीं? तपसाः निर्जरा। अरे.. भगवान! वह तपसाः निर्जरा नहीं, तेरे कवल क्या छः महिना आहार छोड़ दे न। छः महिने आहार की इच्छा बिना नभे तो भी वह

तप नहीं। उससे हटकर शुद्धोपयोग में रमें तब उसको व्यवहारतप कहने में आता है।

निश्चय-व्यवहार झघड़ा भारी भाई! दो नय में जगत भरमाया है। बनारसीदास कहते हैं। आता है न? समयसार नाटक में। दो नय में जगत भरमाया है। नय एक ही सत्यार्थ कहनेवाली है। व्यवहार तो अभूतार्थ अभूतं अर्थं प्रद्योतति। व्यवहार असत्यार्थ असत्य बात को प्रगट करती है। भगवान आत्मा अपना शुद्धोपयोग में रमे तब तप है। व्यवहार कहता है कि उणोदरी तप किया उसको भी हम तप कहते हैं। कहो। समझ में आया? उणोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग। देखो भैया! कायक्लेश। छः महिने तक खड़ा रहे। प्रायश्चित्त लिया। वह सब विकल्प है, प्रभु! तुझे मालूम नहीं। उसको व्यवहारतप कहा वह तो निश्चय में लीन हो तो कहने में आये। व्यवहार-ब्यवहार निरर्थक बन्ध का कारण है। आहाहा..!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- ज्ञान भी वह। विकल्प है न अन्दर। व्यवहार.. ध्यान करुँ, ध्यान करुं... क्या ध्यान? वह भी विकल्प है, राग है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- अंतरंग तो.. वह बाह्य में देखने में आता है, आगे कहेंगे। लोग देखते हैं इसलिये बाह्यतप कहा, वह भी आगे आयेगा। अभ्यंतर तप तो लोगों को नहीं दिखता है इस अपेक्षा से। नहीं तो है तो वह भी बाह्य। आगे आयेगा। पीछे के पन्ने पर आता है। है, देखो आता है। '**इससे निर्जरा मानकर संतुष्ट मत हो। तथा अतरंग तपों में प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त, स्वाध्याय, त्याग और ध्यानरूप जो क्रियाएँ--उनमें बाह्य प्रवर्तन उसे तो बाह्यतप ही जानना। जैसे अनशनादि बाह्य क्रिया है उसी प्रकार यह भी बाह्य क्रिया है, इसलिये प्रायश्चित्तादि बाह्यसाधन अंतरंग तप नहीं है।**' एक पन्ने के बाद है। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक ने तो बहुत रहस्य का उद्घाटन किया है। समझ में आया? ये मकान का उद्घाटन करते हैं कि नहीं अन्दर प्रवेश करने के लिये।

मुमुक्षु :-- इसीलिये गृहस्थ शब्दप्रयोग किया है।

उत्तर :-- हाँ, प्रयोग किया है न, पहले कहा है कि सामान्य का विशेष का रहस्य मैं प्रकाश करता हूँ। मेरी घर की कल्पना का नहीं। है तो अपनी चीजमें से, कल्पना से नहीं। सामान्यरूप से बात कही हो, उसको विशेषकर खोलकर एक-एक कली का पत्ता खोलकर बता दिया कि देखो, यह कमल है। यह कमल है। देखो! कमल में इतनी-इतनी कली है। देखो, एक कली में इतने-इतने पत्ते हैं। बहुत सूक्ष्म हो उसको खोलकर दिखाऊँगा। समझ में आया? अब उनको कुछ लोग अप्रमाणिक

ठहराते हैं। अरे.. भगवान! कौन जाने क्या हुआ है? इतना विद्वत्ता का अभिमान! पढ़ा उसका अभिमान, पढ़ा-लिखा का मान। वह टोडरमल है। इसमें आर्षवचन हो तो हम माने। कहा था न? एक पण्डित कहते हैं कि व्यवहारसमकित का वह निषेध करते हैं, व्यवहारज्ञान का वह निषेध करते हैं। वह ज्ञान-श्रद्धा नहीं। व्यवहारचारित्र को व्यवहारचारित्र कहते नहीं। वह चारित्र नहीं। व्यवहारतप को तप कहते नहीं। परन्तु हमारे आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य पंचास्तिकाय में धम्मादि सद्हं व्यवहार समकित कहते हैं। आर्षवाक्य में तो व्यवहार को समकित कहा है। और वह ना कहते हैं। अरे..! सुन तो सही। वहाँ ११वीं गाथा में भी ना कहा है। समयसार। व्यवहार अभूतार्थ (है)। जहाँ-जहाँ पर की अपेक्षा से कथन चला हो उसका नाम सम्यग्दर्शन है ही नहीं। वह तो ११वीं गाथा में कह दिया। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' व्यवहार--सद्भूत उपचार व्यवहार हो स्वपरप्रकाशक, सद्भूत अनुपचार व्यवहार हो--ज्ञान सो आत्मा--भेद, असद्भूत उपचार हो--राग दिखने में आता है उसे अपना जानना। असद्भूत अनुपचार हो--ख्याल में राग नहीं आता है, परन्तु ख्याल में आया तो ख्याल में है, इन सब का कथन व्यवहारनय का अभूतार्थ कहते हैं। गुण-गुणी का भेद भी अभूतार्थ नय है। विरजीभाई! विरजीभाई को पहली शंका पड़ी थी। अरे..! केवलज्ञान पर का? भेद? केवलज्ञान अपना नहीं? ऐसा जब पहली बार पढ़ा था न, शंका पड़ी थी। फिर ... अरे..! केवलज्ञान व्यवहारनय का विषय। आहाहा..! लेकिन वह किसको? उसको कहाँ है? केवलज्ञानी को कहाँ व्यवहार है या निश्चय है? वह तो प्रमाणज्ञान अखण्ड हो गया। जिसको साधना है, स्वभाव की शुद्धि की वृद्धि करनी है, उसको केवलज्ञान की पर्याय लक्ष्य में लेते हैं तो व्यवहार है, विकल्प उठते हैं। समझ में आया? साधक जीव को जिसको श्रुतप्रमाण है और श्रुतप्रमाण में निश्चय और व्यवहारनय उठती है, उसको कहते हैं, केवलज्ञान पर्याय व्यवहार है, अभूतार्थ है। अभूतार्थ। चिल्लाने लगे।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं सुना? भगवान! वह किस अपेक्षा से कहा? तेरे साधक अपेक्षा से जो प्रमाणज्ञान हुआ.. समझ में आया? क्या प्रमाण? अपना, '**भूदत्थमस्सिदो खलु**'-भूतार्त चैतन्य भगवान के अवलंबन से सम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ भावश्रुतप्रमाण भी प्रगट हुआ। भावश्रुतप्रमाण साथ में प्रगट हुआ वह अवयवी श्रुतप्रमाण और उसके दो भाग पड़ना निश्चय-व्यवहार वह अवयव है। सम्यग्दृष्टि को प्रमाणज्ञान है और प्रमाणज्ञानवाले को निश्चय-व्यवहार है। अज्ञानी को व्यवहार है (ऐसा) तीन काल में होता नहीं। अभी ज्ञान सम्यक् न हुआ तो व्यवहार आया कहाँ-से उसको? समझ में आया?

कहते हैं, अरे..! व्यवहार आता है, ऐसा करते हैं, भगवान ने बारह वर्ष तप

किया। मूलजीभाई! सुना था कि नहीं? व्याख्यान में आये वह। सुख से सुख लिया नहीं, सुख से आहार लिया नहीं, सुख से पानी पिया नहीं, तब जाकर भगवान को बारह वर्ष बाद केवलज्ञान हुआ। दुःखी होंगे? आहाहा..! कष्ट बहुत सहन करते हैं तो निर्जरा होती है। कष्ट बहुत सहन करते हैं उसका नाम तप। कष्ट सहन करने में तो आर्तध्यान जो उत्पन्न होता है, वह तो पुण्यबन्ध का भी कारण नहीं। तो पाप है, तो निर्जरा तो कहाँ-से आयी? भगवान ने ऐसी तपस्या नहीं की। भगवान को आनन्द की लहर उठती थी। आनन्द की लहर.. जैसे दबाते हैं न? समझ में आया? आप का क्या कहते हैं? फ़व्वारा, पानी का फ़व्वारा होता है न? ऐसे दबाये तो फ़व्वारा फूटे।

ऐसे आनंद अंतर में पड़ा है। वीर्य से एकाग्र हुआ, फट (आनंद प्रगट) हुआ। पर्याय में अतीन्द्रिय शांति और आनंद में झुलना उसका नाम भगवान ने बारह वर्ष तप किया। बाहर का तप को व्यवहारतप उपचार से कहने में आता है। वह व्यवहारतप बन्ध का ही कारण है, बन्ध के कारण को निर्जरा का कारण उपचार से कहने में आया है, वह है नहीं। कहो, समझ में आया?

भगवान... यह तीर्थंकर की बात चलती है न? '**दीक्षा लेकर दो उपवास ही क्यों धारण करते? उनकी तो शक्ति भी बहुत थी।**' भगवान की शक्ति तो बहुत थी। '**परन्तु जैसे परिणाम हुए वैसे बाह्य साधन द्वारा...**' परिणाम हुए, परिणाम हुए। बाह्य साधन ... '**एक वीतराग शुद्धोपयोग का अभ्यास किया।**' शुभराग का नहीं, आहार छोड़ने का नहीं। अभ्यास तो अंतर... देखो! ओहोहो..! अंतर्मुख का अभ्यास शुद्धोपयोग का उसने किया है। दूसरा कोई उसने किया नहीं। उसमें निर्जरा होती है और उसमें शुद्धि की वृद्धि होकर केवलज्ञान होता है।

'**प्रश्न :-- यदि ऐसा है तो अनशनादिक को तप संज्ञा कैसे हुई?**' उसको तप कहा न? बोरी को चावल कहा। बारदान को चावल में गिना, कारण क्या है? पोपटभाई!

'**समाधान :-- उन्हें बाह्य तप कहा है। सो बाह्य का अर्थ यह है कि 'बाहर से औरों को दिखायी दे...**'' देखो! आया न? लोग देखते हैं कि इसने उपवास किया, शरीर जीर्ण हुआ, आहार मिलता था फिर भी छोड़ दिया। कुटुम्ब में दस सदस्य है, सब खाते हैं, इसने एक ने नहीं खाया, ऐसा लोगों को ख्याल आता है। कवल कम किये। बत्तीस कवल हंमेशा तो बहुत खाते थे। सवा शेर अनाज, सवा शेर हलवा, लड्डु तीन खा जाता है, आज तो दो ही खाया। (ऐसा) लोग देखे। समझे? '**यह तपस्वी है**' बाहर दिखे और यह तपस्वी है। लो, मास-मास खमण का पारणा

किया तो तपस्वी नाम पड़े। परन्तु इच्छानिरोध करके शुद्धि की वृद्धि की हो उसको तपस्वी कहें बाहर में? कहाँ गये तपसी? लो, तापसी नाम हो गया। दो-दो महिने के उपवास किये हैं। '**परन्तु आप तो फल जैसे अंतरंग परिणाम होंगे वैसा ही पायेगा,...**' प्रभु! बाह्य की क्रिया तो जैसी होगी वह होगी, परन्तु अंतरंग तेरा परिणाम शुभ, अशुभ और अशुद्ध है वैसा परिणाम बन्ध होगा, कोई बाह्य परिणाम के आश्रय से बन्ध-मुक्ति नहीं है। शुभाशुभ परिणाम हो तो बन्ध होगा, शुद्धभाव हो तो निर्जरा होगी। बाह्य की क्रिया के आलम्बन से कुछ है नहीं।

'**क्योंकि परिणामशून्य...**' लो, परिणामशून्य, देखो! उसकी भी बहुत टीका करते हैं। '**शरीर की क्रिया फलदाता नहीं है।**' शरीर की क्रिया फलदाता नहीं। पोकार करते हैं। इसको तो असत्य ठहरावे न। आहाहा..! पत्र में लिखते हैं, लो, सोनगढ़वाले कहते हैं कि शरीर की क्रिया से पुण्य-पाप है ही नहीं। लाख बार नहीं, अनन्त बार भगवान कहते हैं। समझ में आया? भगवान ने भेजा है। समझ में आया? कहते हैं कि '**परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नहीं है।**' शरीर क्या करे? जड़ की पर्याय है, उससे पुण्य होता है? शरीरी की क्रिया में भले ऐसा-ऐसा हाथ चलता हो और परिणाम हो अशुभ। समझे? विचार आया दुकान का और भगवान के सामने हाथ जोड़कर बैठा है और परिणाम आया दुकान का, पुत्र का, अरे..! पाप है। शरीरी क्रिया से होगा? कुंवरजीभाई! मालूम है कि नहीं? (संवत) १९८१ में। इच्छामि खमासणा ऐसे करते थे और ऐसे ही खड़े रहे, दूसरे विचार में चढ गये। गढ़डा, १९८१ की बात है, गढ़डा, गढ़डा। १९ और १८, ३७ (साल) हुए। बैठे थे ऐसे ही। विचार की ... इच्छामि खमासणा देना था न, खड़े हुए, बैठना नहीं हुआ, सब बन्द हो गया तो भी बैठे नहीं, ऐसे ही विचार में लीन हो गये।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- धूल का ध्यान था, दुकान का था। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है यहाँ।

'**परिणामशून्य शरीर की क्रिया फलदाता नहीं है।**' समझ में आया? परिणाम में शून्यता है, शुभ-अशुभ का ठिकाना नहीं, शुद्धता का ठिकाना नहीं और शरीर की क्रिया फलदाता नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं, नहीं। वह तो परिणाम से फल है, शरीर से फल है नहीं। बन्ध का कारण परद्रव्य नहीं, बन्ध का कारण अपना अध्यवसाय है, यह निर्जरा अधिकार में आया कि नहीं? परवस्तु निमित्त है कषाय में, परन्तु परवस्तु बन्ध का कारण नहीं।

समझ में आया? बन्ध का कारण तो उसका अध्यवसाय है। वह तो शुद्ध को भी अध्यवसाय कहते हैं। शुद्ध अध्यवसाय हो तो निर्जरा होती है। शुभाशुभ परिणाम का अध्यवसाय हो तो बन्ध होता है। अध्यवसाय तो शुद्ध को भी कहते हैं।

'**यहाँ फिर प्रश्न है कि शास्त्र में तो अकाम-निर्जरा कही है।**' उससे तो हम इच्छा सहित करते हैं, ऐसा बताना है। '**वहाँ बिना इच्छा के भूख-प्यास आदि सहने से निर्जरा होती है,...**' देखो, तर्क निकाला, तर्क निकाला। आप तो इतना लेते हो, लेकिन हम तो इच्छा सहित त्याग करते हैं। और उसको इच्छा बिना सहन करे तो भी अकाम निर्जरा (होती है), तो हमें तो कुछ सकाम होगी कि नहीं? समझ में आया? '**भूख-प्यास सहने से निर्जरा होती है, तो फिर उपवासादि द्वारा कष्ट सहने से कैसे निर्जरा न हो?**' उपवास करें, उणोदरी करें, चीज हो उसको छोड़ देते हैं, चीज थाली में आयी, मावा के जांबू सवा शेर घी में तले हुए... जांबू नहीं होते हैं मावा के? गुलाबजांबू। उसमें दाँत भी नहीं चाहिये और घी में तले हुए तरबतर, लो, सवा शेर खाओ। नहीं। आज मेरा तप है। ये स्वाधीनपने खाये नहीं, उसको पराधीनपने अकाम निर्जरा हो और आप स्वाधीनपने निर्जरा नहीं कहते, महाराज! बहुत फेरफार है। समझ में आया? अरे.. भगवान! बात तो सुन। अकाम निर्जरा में भी कैसा भाव है और कैसा निमित्त बिना बना है, उसका विवेक कर।

'**अकाम निर्जरा से...**' अकाम समझे न? इच्छा नहीं थी और सहन करना, इतना कोई शुभ परिणाम हुआ। '**अकाम-निर्जरा में भी बाह्य निमित्त तो बिना इच्छा के भूख-प्यास का सहन करना हुआ।**' बिना चाहे प्रसंग ऐसा आया (कि) ब्रह्मचर्य पालना पड़ा। जेलर को बिना इच्छा भूख सहन करनी पड़ी। '**और वहाँ मन्दकषायरूप भाव हो, तो पाप की निर्जरा होती है,...**' मन्द कषाय का परिणाम पुण्यभाव हो तो पाप की अकाम निर्जरा कहने में आती है। '**देवादि पुण्य का बन्ध होता है।**' अकाम निर्जरावाले को मन्द कषाय हो तो पुण्य बन्ध होता है। उतनी बाह्य क्रिया पराधीन मिली तो पुण्य परिणाम बिना बन्ध हो जाता है और अकाम निर्जरा होती है ऐसा होता नहीं।

'**परन्तु यदि तीव्र कषाय होने पर भी कष्ट सहने से पुण्यबन्ध होता हो तो सर्व तिर्यंचादिक देव ही हों,...**' सब पशु देव में ही जाये। उसको देखो न, बेचारे कितने दुःखी (होते हैं)। कुछ लोग गाय को घास दे, दूध दे इसलिये, लेकिन बछड़ा हो उसको घास मिलता नहीं। यह एक महिना, सवा महिना देर हो गयी थी न (बरसाद को)? अब घास हो गया। तो कहते हैं कि,.. सब दुःखी। ... छप्पन के दुष्काल में देखा था न। ओहो..! सौ-सौ गाउ में पचास-पचास गाय (खड़ी हो)।

ग्वाला खड़ा हो कम्बल डालकर। एक गाय के ऊपर कम्बल रखकर जोर-जोर से रोता हो। ऐसा छप्पन में देखा था, दस साल की उम्र थी। रोये, अरेरे..! सौ-सौ गाय खत्म हो गयी। गाय की आँखमें से आंसू, इतनी भूख होती है न। गाय समझे न? छप्पनिया का दुष्काल, सैंकड़ो गाय (मर गयी)। बैं.. बैं.. करे ग्वाला, कम्बल कंधे पर डालकर ऐसे सर (रखकर रोये), यह प्रत्यक्ष देखा है। आहा..! समझे? रोये, गाय की आँखमें से आँसू निकले, आठ-आठ दिन, पंद्रह-पंद्रह दिन से घास न मिले। छप्पनिया का दुष्काल, (तो वह पशु) स्वर्ग में जाये। यदि मन्द कषाय के परिणाम हुए बिना अकाम निर्जरा हो तो सब स्वर्ग में जाना चाहिये। सैंकड़ो, लाखो गाय, हज़ारो गाय का झुण्ड निकले। कषाय मन्द.. हाँ, अकाम-निर्जरा में बाह्य निमित्त इच्छा बिना मिला और अंतर में कषाय मन्द हो तो पुण्य बाँधे, तो पाप की अकाम निर्जरा होती है। कहो, समझ में आया?

'**सो बनता नहीं है।**' पुण्य परिणाम हुए बिना बाह्य कष्ट आया उससे अकाम-निर्जरा हो, ऐसा तो बनता नहीं। '**उसी प्रकार इच्छापूर्वक उपवासादि करने से...**' देखो! इच्छा करके उपवास किया, उणोदरी करी, रसपरित्याग किया, '**वहाँ भूख-प्यासादि कष्ट सहते हैं, सो यह बाह्य निमित्त है;...**' बाह्य संयोग है। '**परन्तु वहाँ जैसा परिणाम हो...**' देखो, निमित्त उड़ गया। निमित्त तो ऐसा है। परिणाम जैसा हो वैसा बन्ध पड़ता है। '**वहाँ जैसा परिणाम हो वैसा फल पाता है। जैसे अन्न को प्राण कहा...**' लो, अन्न को प्राण कहा। अन्न समान प्राण नहीं, आता है न? लोग कहते हैं। तो अन्न प्राण है?

'**तथा इस प्रकार बाह्य साधन होने से अंतरंग तप की वृद्धि होती है इसलिये उपचार से इनको तप कहा है;...**' लो। अन्न को जैसे उपचार से प्राण कहा। यदि प्राण टिकने की अवस्था हो तो अन्न निमित्त है, उसको प्राण कहने में आया है। ऐसे अपना शुद्धोपयोग आदि... यहाँ तो अकाम निर्जरा (की बात है), कषाय की मन्दता का परिणाम हो तो बाह्य से निमित्त कहने में आता है। और शुद्धोपयोग में भी बाह्य उपवास आदि (को), शुद्धउपयोग हुआ तो बाह्य उपवास को निमित्त कहने में आता है। निमित्त तो ऐसा किया लेकिन परिणाम में शुद्धोपयोग नहीं किया तो कभी निर्जरा किंचित् भी होती नहीं, शुद्धि उसको होती नहीं, परन्तु पाप का बन्ध हुआ। '**इसलिये उपचार से इनको तप कहा है;...**' देखो! उपचार, उपचार। लोग इसकी तकरार करते हैं।

मुमुक्षु :-- वह कहते हैं, ... उपचार नहीं कहते।

उत्तर :-- यहाँ कहते हैं कि, व्यवहार को हम उपचार कहते हैं। शास्त्र ने कहा,

स्वयं शास्त्र ने समयसार में कहा, जगह-जगह कहा, व्यवहार सो उपचार, निश्चय सो अनुपचार कहो या यथार्थ कहो। क्या करे? ऐसा मनुष्यदेह मिला, उसमें भी अभी शास्त्र का विपरीत अर्थ करने में रुके। कहते हैं न वह? 'जन्मअंधनो दोष नहीं आकरो, जातिअंधनो दोष नहीं आकरो, जे जाणे नहीं अर्थ, मिथ्यादृष्टि ऐथी आकरो करे अर्थना अनर्थ।' समझ में आया? अंधा तो बेचारा देखता नहीं कि क्या है अर्थ? कैसे अर्थ करुँ? वह अक्षर देखता है, अरे...! व्यवहार के अर्थ को निश्चय में लगा देता है, करे अर्थ का अनर्थ। भगवान आचार्य कहते हैं कि एक-एक गाथा में नयार्थ करना चाहिये। व्यवहारनय से यह कथन है, स्वआश्रय निश्चय से कथन है ऐसा नयार्थ समझे बिना गाथा को मरोड़कर अर्थ करता है, वह बड़ा अन्याय करता है। समझ में आया?

वह कहते हैं कि अंतरंग तप न हो और बाह्यतप हो तो '**उपचार से भी उसे तप संज्ञा नहीं है।**' देखो! निश्चय में शुद्धोपयोग हो तो व्यवहारतप को निमित्तपने उपचार से तप कहने में आता है। निश्चय न हो तो उसको उपचार भी कहने में आता नहीं। निश्चय का आरोप उसमें आता है, वास्तव में वह तप है नहीं। अंतर का शुद्धोपयोग हुआ तो निर्जरा होती है, बाह्यतप से निर्जरा होती नहीं।

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मंगलवार, दि. १४-८-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ६

मोक्षमार्गप्रकाशक, सप्तम अध्याय चलता है। फिर से, '**यहाँ कोई कहे कि...**' वहाँ-से लेना है। है? प्रश्न, प्रश्न। '**यहाँ कोई कहे कि शुभभावों से पाप की निर्जरा होती है,...**' अपने में कषाय मन्द हो तो पूर्व का पाप है उसकी निर्जरा होती है। ऐसा शिष्य का प्रश्न है। और '**पुण्य का बन्ध होता है।**' शुभभाव से पाप की निर्जरा और पुण्य का बन्ध। '**शुद्धभाव से दोनों की निर्जरा होती है...**' और शुद्धभाव, जितना अंतर रागरहित जितनी वीतरागी पवित्र पर्याय प्रगट हुई उससे तो दोनों की--पुण्य और पाप की निर्जरा है, ऐसा हम कहते हैं। ऐसा शिष्य का